कुछ अपनी बात

अनवर सुहैल

कुछ अपनी बात

अनवर सुहैल

प्रकाशक: नॉटनल

प्रकाशन: अप्रैल, 2026

© अनवर सुहैल

'कुछ अपनी बात' की जरूरत अपने शोधार्थियों के प्रश्नोत्तर के जवाब लिखते समय इसे एक पुस्तिका के रूप में का विचार आया. चूँकि मेरे जीवन में ऐसा कुछ सिलसिलेवार घटनाएँ नहीं हैं, बेहद साधारण जीवन जिसमें अपने माता-पिता और समाज से भारतीयता की ऐसी खाद - पानी मिली कि मुझे खुद को बचाए रखने के लिए ज़्यादा संघर्ष नहीं करना पड़ा. खुद को एक दूसरा आदमी बन कर देखना और बिना लाग-लपेट के उसे लिखना बेहद कठिन था लेकिन मैंने जैसी तरबियत और तालीम पाई है उसमें सब कुछ सहज भाव से होता चला गया.

बाल्य-काल

कुछ भी विलक्षण नहीं है बाल - जीवन में सिवाय सृजन के स्वप्न के..

ये एक ऐसा स्वप्न है जो अब भी बेचैन किये रहता है.. और यही बेचैनी कुछ नया करने को प्रेरित करती है. एकदम बच्चा था जब तब चार आने में कापी आती थी और चार आने की पेन्सिल. नानी आतीं तो वो बच्चों को अपनी आमद पर खुश होकर आठ आने दिया करतीं. भाई-बहन उन पैसों का क्या करते मुझे याद नहीं लेकिन मैं दौड़ा-दौड़ा मुल्लाजी की किताब दूकान जा पहुँचता. उनकी दुकान से एक कापी और पेन्सिल खरीद लाता...

ये मेरे अक्षर-ज्ञान से पहले के दिन थे... जब बेशक मैं छः साल का नहीं हुआ था. क्योंकि तब छः साल होने पर ही स्कूल में दाखिला मिलता था. तो उस कापी पर पेन्सिल से मैं बड़ी रवानी से गोलम - गुल्लम लिखा करता.. बीच-बीच में कुछ आकृतियों को काट भी दिया करता और कुछ आकृतियों के ऊपर लाइन खींचा करता...

छोटा भाई बड़ी उत्सुकता से मेरी हरकत देखा करता और पूछता- 'का कर रहे हो भईया ?'

तो मैं गर्व से बताता - 'वकीलों की तरह लिख रहा हूँ....!'

मेरा गृह नगर तहसील था सो वहां तहसील दफ्तर के बाहर मैं कई बाबुओं को कागज़ पर कलम घिसते देखा करता था. मुझे लगता कि संसार का सारा ज्ञान इन बाबुओं के

पास होगा तभी तो सेठ-महाजन, अधिकारी और अन्य लोग इन बाबुओं के पास बैठकर बड़ी तल्लीनता से उन्हें काम करते देखा करते हैं. ये बाबू कोई सूट-बूट वाले नहीं होते थे बल्कि धोती- कुर्ता, पजामा - क़मीज़ वाले हुआ करते थे. इनके चेहरे पर ज़माने भर की गंभीरता आसानी से दिखलाई देती थी. फिर जब दाहिने हाथ से बांया कान पकड़ में आने लगा तब अब्बा ने कहा कि अब पहली में नाम लिख जाएगा.

मेरा दोस्त था बगल के लाज में काम करने वाले का बेटा.. उसके साथ मैंने अब्बा के रेलवे प्राइमरी स्कूल में नाम लिखवा लिया और अचानक से इतना गंभीर हो गया कि जैसे किसी बड़ी क्लास में पढ़ने वाला बच्चा हो गया हूँ. मेरे कक्षा शिक्षक मिश्रा गुरूजी सफ़ेद धोती और लम्बा कुरता पहनते थे. वे मुझे बहुत मानते थे, क्योंकि मैंने तब तक गुपचुप रूप से अपनी दीदी लोगों की संगत में अक्षर - ज्ञान प्राप्त कर लिया था. एक से सौ तक की गिनती लिखनी मुझे आती थी. हाँ, पहाड़ा स्कूल में जाकर रटने लगा था. मिश्रा गुरूजी कुर्सी पर बैठकर खैनी खाते फिर ऊंघने लगते और मुझे बच्चों को अक्षर-ज्ञान का काम सौंप देते थे.

उस जमाने में हम सिर्फ हिंदी भाषा ही पढ़ते थे. अंग्रेजी का औपचारिक ज्ञान हमें छठवीं कक्षा से मिला था.

स्कूल में बिना पैसे के खेल हम खेला करते. जैसे आमाडंडी, छुपा-छुपौवल, पिट्ठुल और लड़कियों के खेल जैसे खो-खो, लंगड़ी घोड़ी, धुप-छाँह आदि.